Jankriti International Magazine
Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018

जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

शोध आलेख

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक दृष्किोण

श्यामलाल गौड़

20वीं सदी में जन्में साहित्यकार नागार्जुन एक युग का नाम बनकर हमारे सामने आते हैं। इस युग की पहचान है, नागार्जुन के उपन्यासों का समाजवादी यथार्थवाद। मूलतः नागार्जुन के उपन्यास समाज की तत्कालिक संवेदना का इतिहास है, जिनमें उनकी एक-एक धड़कन शब्दबद्ध है। नागार्जुन ने सीधी-सादी बात को इतनी सरलता पूर्वक कहा है, कि जनमानस के यथार्थ को छूकर उथल-पुथल मचा देती है। नागार्जुन एक ऐसा चेहरा है, जो भीड़ में भी सहसा चमकता उभरता है। तथा सादगी का बोध कराता है। नागार्जुन की भाषा सरल है और उसमें शब्द, अर्थ का रिश्ता बड़ी गहराई से दृष्टिगत होता है, अर्थात भारी भरकम शब्दों का प्रयोग न करके सरल व ग्रामीण शब्दों के प्रयोग किये गये हैं। यही कारण है कि भाषा की सादगी फुहड़ता नहीं, संयम और संवरण है। नागार्जुन ने समाज की परम्परा को पददलित करने का प्रयत्न किया है। और इसी बदलाव की स्थिति में अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज का वह अछूता अनदेखा दृश्य पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है, जिसे प्रायः देखकर भी अनदेखा किया जाता रहा। कभी-कभी परम्परा को तोड़ने वाला ही परम्परा का परिष्कार करने का भी अधिकारी होता है।

नागार्जुन ने इसी उपेक्षित सांस्कृतिक मर्यादा का अन्वेषण कर, इसे भ्रमित समाज के समक्ष उपन्यासों के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आपसी रिश्तों का महत्व, पति-पत्नी के रिश्ते की आधारशिला, जीवन के नैतिक मूल्यों की भूमिका, व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति नजरिया, विशेषतः नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण, सच्चे धर्म के प्रति आस्था आदि मर्यादित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। सांस्कृतिक अन्वेषण की दृष्टि से नागार्जुन ने ग्रामीण निवासियों के रहन-सहन का स्तर, खान-पान का ढंग, उनकी मान्यताएं और प्रथाएं, पूजा-पद्धति, धार्मिक आस्था, बोलचाल का तरीका आदि इस तरह उन्होंने आज की सभ्यता से दूर, और नगर संस्कृति से अप्रभावित अनजानी भूमि को चित्रित किया है। आज तीव्रता से परिवर्तित शहरी जीवन की तुलना में, अंचलीय जीवन पहले जैसा ही निश्छल और स्वच्छ है। पुनीत और पावन लोक संस्कृति की मनोरम झांकी की के साथ ही वहाँ के समाज और जीवन विधि का यथार्थ रूपायन ही सांस्कृतिक अन्वेषण का मुख्य आधार है।

नागार्जुन ने 'बलचनमा' तथा 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यासों के प्रणयन में मर्यादित सांस्कृतिक दृष्टि का उन्मेष हुआ है। चूँकि आज के इलेक्ट्रानिक युग की सभ्यता मशीनी हो गई है। विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य से उसकी मनुष्यता छीन ली है। मानवीय संवेदनाओं, मानवीय मूल्यों और गुणों एवं मानवीय भाव लोकों में

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

नीरसता परिलक्षित होने लगी है। इससे प्रदर्शन, कृत्रिमता, आडम्बर, अपरिचयन हमारे संस्कार बन गये हैं। इसी कारण नागार्जुन के उपन्यासों ने सांस्कृतिक विशिष्टता को पुनः जीवित करने का प्रयास किया है। समस्त भारत भूमि हमारा घर हमारा कुटुम्ब है, इसकी पुनः स्थापना का प्रयत्न किया जाना आवश्यक है। मानव चिन्तन समाज सापेक्ष होता है, अतः साहित्य भी नितान्त समाज निरपेक्ष नहीं होता। इस दृष्टि से नागार्जुन का उपन्यास साहित्य असामाजिक व्यक्तित्व का आत्मभिव्यंजक व विस्फोट मात्र नहीं, वरन् समाज के प्रभावों से उद्भूत होते हुए अपनी जीवनी शक्ति के कारण सामाजिक चेतना का प्रेरक एवं प्रसारक भी है। यह सच है कि समाज में होने वाले परिवर्तनों का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु साहित्य भी समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। और यह खूबी नागार्जुन साहित्य में मौजूद है।

सामाजिक दशाओं का जो चित्रण नागार्जुन ने अपने कथा साहित्य में किया है। उसे देखकर लगता है कि आज का समाज अनेक सामाजिक विसंगतियों से ग्रस्त है। उनके अनुसार भारतीय जन जीवन में सबसे बड़ी विसंगतियाँ जाति-प्रथा, छुआ-छूत की हैं। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च समझे जाते थे। वे दया, धर्म, परोपकार आदि गुणों से सम्पन्न होते थे। लेकिन धार्मिक रूढ़ियों के विकास के साथ ही ब्राह्मणों में इन गुणों का लोप होता चला गया। धार्मिक रुढ़ियों और अंधविश्वासों को इस वर्ग ने सर्वाधिक प्रश्रय दिया। जिस समाज में धर्म की आड़ लेकर एक वर्ग दूसरे का शोषण करता रहा है। नागार्जुन के उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में जयनाथ, भोला पंडित, आदि ब्राह्मण समाज के पात्र हैं। इसी उपन्यास का एक अन्य पात्र कुल्लीराउत निम्न जाति का है। वह चुपके से कुछ मंत्र सीख लेता है। जब इस बात का पता रतिनाथ के पिता जयनाथ को चलता है, तो वह फुफकार उठता है, ''साले की चमड़ी उधेड़ लूँगा, शूद्र है तो शूद्र की भांति रहे''। स्पष्ट है कि इस वर्ग की नजर में निम्न जाति के लोगों को धर्ममंत्र के पठन-पाठन का कोई अधिकार नहीं। इसी उपन्यास का नायक रतिनाथ तरकुलवा जाते हुए मार्ग में तालाब के किनारे बैठ जल्दी-जल्दी संध्या करता है, इस पर कुल्लीराउत ने रतिनाथ से मुस्कराकर कहा- ''लो बाप के गुण सीख न गये।''[1] रतिनाथ को कुल्लीराउत की इस बात में सत्य के दर्शन होने लगते हैं, और वह विचार करने लगता है कि उच्च जाति के ब्राह्मण और निम्न जाति के कुल्लीराउत की विषय सामाजिक स्थिति का कारण वस्तुतः, धर्म और जाति के आरोपित विधि-विधान ही हैं।

'बलचनमा' उपन्यास में मैथिल ब्राह्मण छोटी जाति वालों का छुआ हुआ भोजन नहीं करते। 'तिरहुतिया बाँभन बड़े खटकर्मी होते हैं। छोटी जाति वालों का छुआ नहीं खायेगें। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अछूत कहे जाने वाले लोगों के प्रति उपन्यासकार के हृदय में उनके लिए अथाह सहानुभूति है। इसलिए उन्होंने अपने औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से उनमें सामाजिक उद्धार का रचनात्मक कार्य किया है। लेखक के हृदय में हरिजन एवं अछूत समझे जाने वाले लोगों के प्रति सहानुभूति है और उन्हें जाति-पाँति एवं छुआछूत के भेदभाव नहीं आते। नागार्जुन अपने कथा साहित्य के माध्यम से ग्रामीण और नगर के

[1] रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृष्ठ 54-55

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

सामाजिक जीवन का यथार्थ स्वरूप को भी रेखांकित करते हैं।

नागार्जुन ने अपनी प्रथम कृति ''रतिनाथ की चाची'' (1948) की भावभूमि में दरभंगा-जनपद का शुभंकरपुर गाँव को चित्रित किया है। वहाँ के हिल्लोरित सर-सरिताओं और प्राकृतिक श्री सुषमा की पृष्ठभूमि पर ग्राम-जीवन के यथार्थ चित्र उकेरे गये हैं। इस उपन्यास में ग्रामीण विधवा गौरी की कष्टभरी करूण कहानी है। जिसके द्वारा मैथिली ग्रामीण परिवार तथा ग्रामीण जीवन का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। ग्रामीण जीवन में प्रचलित भेदभावों की समस्यायें, उनमें विधवा विवाहों का दयनीय जीवन आदि के चित्रण द्वारा समाज जीवन मानो प्रत्यक्ष हो गया हो।

विधवा गौरी के अपने देवर जयनाथ की रुग्ण मनोवृति का शिकार होने पर उसके असहाय, अपमानित और प्रताड़ित जीवन की करुण कथा-यात्रा शुरू होती है। उपन्यासकार ने वहाँ के वास्तविक परिवेश को उभारकर कितना मार्मिक बना दिया है। यह उनकी सूक्ष्म यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक है। इस उपन्यास में बागों, तालाब-पोखरों, खेतों आदि का बड़ा ही सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण किया गया है। इस दृष्टि से रतिनाथ के मोतिहारी जाने का प्रसंग उल्लेख्य है। ''आज अपने टोल-पड़ोस की हर वस्तु सचेत सी प्रतीत हो रही थी। लगा कि उसे सब मना कर रहे हैं। मत जाओ मत जाओ, मत जाओ तालाब, बुड्ढा पीपल, मौलसिटी का वह बौना पेड़, वे खेत, वे बाग, वे झाडियाँ, वे झुरमुट, बहबल आहा। उन्होंने मानो चिल्ला चिल्लाकर रतिनाथ को मना करना शुरू किया 'कहाँ जाओगे, लौट चलो, लौट चलो।''[2]

'रतिनाथ की चाची' में गौरी एक विधवा ब्राह्मणी है। इस ग्रामीण विधवा की व्यथा को सचमुच पूरी ईमानदारी के साथ उपन्यासकार ने अंकित किया है। इस उपन्यास में ऊँच-नीच, जाति-पाँति से उत्पन्न समस्यायें बिकते हुए वर, छूआ-छूत, भोज-भात सभी को चित्रित किया गया है। गौरी के चरित्र के माध्यम से, वहां के समाज में गहरी जड़े जमाये अंतर्विरोधी परतों को उधेड़ दिया गया है। गौरी समाज के आरोपित लांछन अंधविश्वास एवं क्रूरता के कारण अपने जीवन का दयनीय अंत कर लेती है। दूसरी ओर इसी उपन्यास में दमयंती का चरित्र समाज में पायी जाने वाली कुटिल बुद्धि नारियों का प्रतिनिधित्व करती है, उपन्यासकार ने गौरी के विधवा-जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ ही शुभंकरपुर गाँव में पनपती हुई समाजवादी चेतना को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'बलचनमा' उपन्यास नागार्जुन की सन् 1952 में लिखी गई रचना है। यह लेखक का सर्वश्रेष्ठ घोषित उपन्यास है। इस उपन्यास का कैन्वस उनके अन्य उपन्यासों से अधिक व्यापक व दरभंगा जिले के साधन हीन, अभावग्रस्त और निर्धन कृषक परिवारों के जीवन को गहरी मार्मिकता के साथ उद्घाटित किया गया है। इस उपन्यास का कालक्रम सन् 1937 से पूर्व का है। सन् 1937 तक ग्रामीण जनों पर ईश्वरीय विधान के नाम पर जमींदार द्वारा किये गये अनवरत शोषण एवं क्रूर दमन के विरूद्ध उभरती प्रतिहिंसा की सशक्त अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का प्रमुख प्रतिपाद्य है। कृषकों में पनपती

[2] रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृष्ठ 104

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

जमींदार-विराधी चेतना का वाहक एवं प्रतिनिध पात्र बलचनमा है। वह अपने चारित्रिक गुणों के कारण भारत के समस्त कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। इस क्षेत्र के आर्थिक अभावों का यथातथ्य वर्णन करते हुए उपन्याकार ने वहां के जन-जीवन से सम्बद्ध बारीक से बारीक विवरण देकर उपन्यास के कथ्य को बहुत सहज और विश्वसनीय बना दिया। इस उपन्यास में पात्रों के रूप, गुणशील-स्वभाव, आचार-व्यवहार तथा घटना-प्रसंगों आदि के चित्रण में स्वाभाविक है। जहाँ जमींदारों के नृशंसता, दुराचरण, क्रूरता, हृदयहीनता, आदि प्रवृति का वर्णन है, वहां लेखनी बड़ी तीखी हो उठी है, और इसके कारण चित्र स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं।

बलचमना के बाद ललचनमा द्वारा दोपहर को मालिक के बाग से किसुन भोग आम तोड़कर लाने पर मालिक द्वारा दी गयी सजा का दृश्य अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय विदारक है। बलचनमा के अनुसार- ‘‘मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली (पलता खम्भा) के सहारे बाँध दिया गया था। जाँघ, चूतर, पीठ और बाँह, सभी पर बाँस की हरी केली के निशान उभर आये हैं। चोट से कहीं खाल उधड़ गयी है, और मोटी आखों से बहते आँसुओं के धार (बहाव) गाल और छाती पर से नीचे चले गये है, चेहरा काला पड़ गया है। होंठ सूख रहे हैं, अलग कुछ दूर छोटी चैकी पर यमराज की भांति मझले मालिक बैठे हुए हैं। दायें हाथ की अँगुलियाँ रह-रहकर मूँछों पर फिर जाती है, उनकी वह लाल और गहरी आँख कितनी डरावनी है, बाप रे।’’ [3] बलचनमा की नौकरी के सन्दर्भ में बलचनमा की दादी और छोटी मालकिन के बीच हुआ वार्तालाप वहाँ के पूरे परिवेश को उसके समस्त अंत- र्विरोधों के साथ उद्घाटित कर देता है। इसलिए यह उपन्यास एक जीवंत दस्तावेज बन गया है।

‘नई पौध’ इस उपन्यास की रचना (1953) में की गयी थी लेखक ने इस उपन्यास में मिथिला-अंचल के जन जीवन का यथार्थ स्वरूप को अंकित किया है। यह उपन्यास अनमेल विवाह पर आधारित है। चैदह वर्षीय बिसेसरी का विवाह साठ वर्षीय चुतरा चौधरी से नौगछिया गाँव के नवयुवक नहीं होने देते इस बिंदु को लेकर नयी और पुरानी पीढ़ी में सक्रिय संघर्ष होता है, जिसमें नयी पीढ़ी की विजय होती है। विवाह का सम्पन्न होना गाँव में पनपती प्रगतिशील चेतना को मूर्त रूप देती है। नौगछिया गाँव में रहने वाले विभिन्न परिवारों की सामाजिक दशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है ‘‘सौराठ में शादी विवाह गाँव के प्रमुख द्वारा चीनी और मिट्टी के तेल के वितरण में की जाने वाली धांधली, वर्तमान शासन के स्वरूप की झलक, यथा स्थान धार्मिक मंत्रों का उद्धरण और स्थानी बोलों के शब्दों का प्रयोग ने मिथिला अंचल के सामाजिक जीवन को मानो सजीव बना दिया हो। नागार्जुन ने अनमेल विवाह की समस्या को गाँव की नई पौध द्वारा ललकारा है और उसका अपेक्षित समाधान प्रस्तुत किया है। ‘‘बिसेसरी को एक बूढ़े से विवाह कराकर नारकीय जीवन में ढकेलने का जो षड़यंत्र ढलती पीढी ने किया है और समाज ने जिसका अनुमोदन किया है, उसे उठती पीढ़ी के नव युवकों ने तोड़ दिया है’’[4]।

‘बाबा बटेसरनाथ’ (1954) नागार्जुन की यह कृति हिंदी उपन्यास साहित्य में अद्वितीय है, क्योंकि

[3] बलचनमा, नागार्जुन, पृष्ठ 3

[4] हिंदी उपन्यास का अध्ययन, डॉ. गणेशन, पृष्ठ 195

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

बाबा बटेसरनाथ उपन्यास का जो नायक है। वह कोई व्यक्ति नहीं अपितु एक पुराना छतनार का बट वृक्ष है। जिसे सर्जनात्मक कल्पना द्वारा जीवन्त व्यक्तित्व प्रदान कर दिया गया है। यह वृक्ष सवाक रूप धारण कर अपनी कहानी सुनाता है। यह बट वृक्ष, जो नागार्जुन के विचारों का प्रतीक है, एक ही रात में जैकिसुन को रूपवली गाँव की चार पीढ़ियों की कथा सुना देता है। एक शताब्दी से गाँवों के बीचों बीच खड़ा बट वृक्ष ने वट-वृक्ष ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इस बट वृक्ष ने ब्रिटिश कूटनीति एवं उनकी स्वार्थपरता तथा स्वार्थी देश-द्रोहियों का जमींदार वर्ग का, इन जमींदारों द्वारा की गयी निरंकुशता और इनके द्वारा जनता पर उठाये गये जुल्मों को आत्मकथा के रूप में सुनाता है। उपन्यासकार ने इन समस्याओं का निराकरण केवल साम्यवादी-समाजवादी समाजव्यवस्था में ही देखा है। बट वृक्ष जैकिसुन को सामूहिक शक्ति के बल से अवगत कराते हुए कहता है- ‘‘झींगुरएक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों-हजारों की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं, तो एक अजीब समां बँध जाता है। झीगुरों की यह अखण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती है। सामूहिक स्वर की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है, और होता रहेगा।[5]’’ नागार्जुन की अपने अचंल के प्रति घनिष्ठ आत्मीयता और इसके परिवेश की निकट से पहचान ही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धी है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों- ‘रतिनाथ की चाची’, ‘बलचनमा’, ‘नई पौध’, ‘बाबा बटेसरनाथ’ आदि में मिथिला जनपद के ग्रामीण जीवन, जमींदारों की शोषण वृति, रीतिव्यवहार, आस्था, ग्रामीण मर्यादा, नैतिकता, ग्रामांचल के प्राकृतिक दृश्य, ग्रामों में विकसित होती हुई राजनीतिक चेतना आदि का सफल चित्राकंन प्रस्तुत किया है।

नागार्जुन एक सूक्ष्म चिंतक थे। उन्होंने उस परिवेश में रहकर वहाँ की अर्थव्यवस्था का भी सूक्ष्म चिंतन किया। और अपने औपन्यासिक कृतियों में किसानों की आर्थिक दशा को विस्तार पूर्वक अंकित किया, साथ ही उनके कारणों पर भी प्रकाश डाला है, जिन कारणों ने किसान को इस दुर्दशा में पहुंचा दिया है। कृषक वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़ने के कारण इस प्रकार हैं- भूकम्प, बाढ़ एवं अकाल, अशिक्षा के कारण, बढ़ती हुई जनसंख्या, जमींदारों द्वारा शोषण, महाजनों द्वारा शोषण, और साम्राज्यवादियों के द्वारा प्रदत्त शोषण। भूकम्प, बाढ़ एवं अकाल के कारण प्रायः भारतीय जन-जीवन कष्ट पूर्वक रहा है। ईश्वर द्वारा आदिदैविक नामक इस ताप के कारण देश का बिहार प्रांत कई शताब्दियों से जूझता चला आ रहा है, और इसी कारण वहाँ की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी है। चूँकि नागार्जुन के उपन्यासों का कथ्य बिहार के जन-जीवन से लिया गया है। अतः सहज ही वहाँ के आर्थिक चित्रण में बाढ़ एवं अकाल

[5] बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, पृष्ठ 19

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

की विभीषिका के चित्र स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों रतिनाथ की चाची, दुःखमोचन, बाबा बटेसरनाथ आदि में भूकम्प बाढ़ एवं अकालों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। नागार्जुन का विचार है कि इन प्राकृतिक प्रकोपों ने गाँव में रहने वाले किसान एवं मजदूरों की आर्थिक स्थिति को दयनीय स्थिति में पहुँचा दिया है।

'रतिनाथ की चाची' में उपन्यासकार (1934) में भूकम्प के बाद की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि- ''लोगों का कहना था, कि 1934 के भूकम्प के बाद देश की आबोहवा बदल गयी है। नदियाँ, तालाब और पोखर उथले हो गये, इधर पैदा होने वाले बच्चे सांवले नजर आते हैं। आमों की फसल अब साल-साल नहीं आती।'' [6] स्पष्ट है कि भूकम्प के बाद लोगों का स्वास्थ्य खराब हो गया, और इसका प्रभाव ग्रामीणों की फसलों पर भी पड़ा है। 'दुःखमोचन' उपन्यास के टमका-कोइली ग्रामंचल में आयी बाढ, एवं दुःखमोचन की समाज सेवा का चित्रण नागार्जुन ने इस उपन्यास में किया है। इस उपन्यास का नायक दुःखमोचन आदर्श समाज-सेवा का उदाहरण प्रस्तुत करता है, ''बाढ़ पीड़ितों के सहायता-कार्य में मशगूल रहने के कारण क्षण भर की भी फुरसत नहीं मिली थी। अब आज काफी अखबार इकट्ठे ही देखने थे, मगर पलकें नींद की प्यासी थी''। उन्होंने इस उपन्यास में बाढ़ एवं उससे उत्पन्न स्थिति का भीषण चित्र प्रस्तुत किया है।

'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन द्वारा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मानवीय रूप धारी बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन से कहते हैं। ''अकाल की भीषण घटनाओं का मुझे अच्छी तरह पता था। आस पास के इलाकों में उपज का जैसा बुरा हाल था, वह क्या मुझसे छिपा था? भूखे चरवाहे मेरी डालों पर देर-देर तक आड़े-तिरछे खड़े रहते, और कच्ची दुब्धी फलियाँ चबाया करते। पीछे उन्होंने टूसों पर हाथ साफ करना शुरू किया। मेरे पत्रों में, छालों में, टूसों में, कच्ची फलियों की लासा की थोड़ी-बहुत मात्रा होती है। इस लासा के कारण बेचारों की जीभ और तालू अधिक देर तक चालू नहीं रह पाते थे, लिहाजा चरवाहों से मुझे जल्द ही छुटकारा मिल जाता था''। बाबा बटेसरनाथ बाढ़ की कथा को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि ''सो उस रात उन लोगों ने मेरी डालों पर से काफी छाल उधेड़ ली और घर ले आये। दर्द तो मुझे बेहद हुआ लेकिन खुशी भी कम नहीं हुई कि चलो मैं एक हद तक भुक्खड़ों के काम आया। अकाल के उन दिनों में धरती तो जल ही रही थी, साथ ही लोगों के कलेजा तक सूखकर सोंठ बन गये थे।''

नागार्जुन ने मिथिला जपनद के जन-जीवन पर पड़ी अकाल की छाया का बड़ा ही हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत किया है, अकाल और बाढ़ जैसी दैवीय आपदाओं ने किसानोंं के आर्थिक संकट में वृद्धि की है। इन दैवीय आपदाओं ने किसानों के आर्थिक संकट में वृद्धि ही की, और इन दैवीय आपदाओं से जनशक्ति और धनशक्ति दोनों का नाश हुआ।

अशिक्षा के कारण बढ़ती हुई जनसंख्याः अशिक्षा के कारण बढ़ती हुई जनसंख्या भी किसानों की गरीबी का प्रमुख कारण है। अशिक्षा और अज्ञानता से गरीबी बढ़ती

[6] रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृष्ठ 123

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

है, और गरीबी के कारण ही अशिक्षा बनी रहती है। तथा अशिक्षा और अज्ञानता के कारण ही जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। इसी बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बेरोजगारी और महँगाई बढ़ रही है। इसी अशिक्षा के कारण बढ़ती हुई जनसंख्या, और उसके कारण गाँवों में बेकारी और निर्धनता, का नागार्जुन ने अपनी कृतियों में मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। गाँवों में किसान श्रमिक दिन-रात श्रम करके भी अपने लिए दो जून की रोटी नहीं जुटा पाते हैं। 'रतिनाथ की चाची' में वे शुभंकरपुर गाँव की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- ''कि शुभंकरपुर की कुल उपजाऊ जमीन का रकबा तीन सौ बीघा था ढाई सौ बीघा रबी और भदई के थे। इसके अलावा आमों के बाग, बांसों के जंगल, तालाब, गोचर आदि के लिए पचास बीघा और पड़ते थे। ढाई सौ परिवारों की आबादी खाने वाले मुँह ग्यारह सौ थे। साफ है कि गरीब ही अधिक थे।[7]''

'बाबा बेटेसरनाथ' में रूपवली गाँव की आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हुए नागार्जुन लिखते हैं- ''रूपवली बड़ी वस्ती नहीं थी। तीन सौ परिवार थे, खाने वाले मुँहों की तादाद ढाई हजार के अलावा पशुओं-पक्षियों और कुत्तों बिल्लियों के। ब्राह्मण थे, राजपूत थे, भूमिहर थे, बाकी आबादी ग्वालों, अहीरों, धानुकों और मोमिनियों की थी। दोधा चमारों के थे, एक परिवार था पासियों का। बड़ी जाति वालों के पास निर्वाह योग्य जमीन थी। ग्वालों और मोमिनों में भी थोड़े-कुछ खेत थे। साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे, जिनका गुजारा मजदूरी पर निर्भर था। वे काम के लिए पड़ोस के कई गाँवों तक चले जाते, पच्चीस-पचास आदमी शहरों में कुल्लीगिरी या दूसरे मामूली काम करके यहाँ अपने परिवारों की जीविका चलाते थे।''

'बलचनमा' उपन्यास का नायक बलचनमा अपनी निर्धना की करुण गाथा सुनाता हुआ कहता है- ''भूख से मेरी दादी और माँ आम की गुठलियों का गुदा चूर-चूर करके फाँकती हैं, यह भी भगवान ठीक ही करते हैं। और मालिक लोग कनकजीर और तुलसी फूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परबल की तरकारी और घी, दही, चटनी खाते थे, सो यह भी भगवान् की लीला थी।''[8] सम्भवतः भगवद् लीला के वसीभूत होकर ही वे अत्याचार सहकर मालिकों की गुलामी कर रहे थे।

'दुःखमोचन' उपन्यास में टमका-कोइली गाँव की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि ''अधिकांश खेत-मजदूर, रोजी-रोटी की तलाश में अपना-अपना इलाका छोड़कर पूरब-पश्चिम जाने वाली रेलगाड़ियों पर सवार हो चुके थे''[9]। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अशिक्षा का साम्राज्य स्थापित है। क्योंकि पुरानी पीढ़ी तो अशिक्षित ही है। आज की पीड़ी में जिस किसान का लड़का पढ़ लिख जाता है, वह किसान नहीं रहता, वह खेती करना छोड़कर नगर की ओर भागता है।

'रतिनाथ की चाची' के जयदेव मिश्र ज्योतिषी का बड़ा पुत्र हरिदेव पढ़-लिखकर पटना कालेज में प्रोफेसर बन गया है, और छोटा भवदेव एम0एस0सी0 में सर्वप्रथम हो फिलहाल अनुसंधान का कोई काम कर रहा है। वे दोनों ही गाँव में नहीं रहते। गाँव को जाने वाली सड़कों पर पैदल चलना भी सुगम नहीं है। इसीलिए

[7] रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृष्ठ 90
[8] बलचनमा, नागार्जुन, पृष्ठ 17
[9] दुखमोचन, नागार्जुन, पृष्ठ 20

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

आज की नयी शिक्षित पीड़ी को गाँव का सामाजिक जीवन बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। जिसके कारण वे गाँव में रहना नहीं चहाते हैं। न ही ग्रामीण वातावरण को अपने अनुकूल समझते हैं। इन सभी बातों का एक ही कारण है कि ग्रामीण परिवेश में अभी भी अशिक्षा पूर्ण रूप से व्याप्त है।

जमींदार वर्ग द्वारा शोषणः ग्रामीण कृषक वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़ने का कारण एक यह भी है, कि जमींदार एवं पूँजीपतियों द्वारा उनका आर्थिक शोषण होता रहा है। जमींदार वर्ग खेतों को बटाई पर देकर किसानों का शोषण करता आ रहा है। और पूँजीपति धन के बल पर अपनी मनमानी से श्रमिकों का शोषण करता रहा है। यह पँूजीपति वर्ग कभी मजदूरों का वेतन से या अन्य-अन्य तरीकों से धन ऐंठता रहा है। ये जमींदार वर्ग पैंसे के बल से सरकारी अफसरों का सहयोग प्राप्त कर मजदूरों और श्रमिकों का शोषण करते रहे हैं। इन्हीं मजदूरों, श्रमिकों के शोषण को नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। 'रतिनाथ की चाची' में उपन्यासकार का यह कथन ''मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारों की ओर दुनिया भर में बदनामी फैल गयी कि बिहार की काँगे्रस पर जमींदारों का असर है। जवाहर लाल तक ने खुल्म-खुल्ला यह बात कही है।''[10]

'वरुण के बेटे' उपन्यास में भला ही गोंढियारी गाँव के पुराने जमींदार मछुओं से जल-कर प्राप्त करने में असमर्थ होकर ''झील की समीपवर्ती कछारें किस्त बँधी ठेकों पर सस्ते में उठा दी थी''[11] जमींदार उन्मूल के कानून के मुताबिक ''व्यक्तिगत जोत-जमीन, बाग-बगीचे, कुआँ-चमच्चा और पोखर, देवी देवता के नाम पर चढ़ी हुई जायदाद, चारागाह, परती-पराँत, नदियों के पार और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अचल सम्पत्तियों के मामले में जमीं दारी-उन्मूलन कानून ने भू-स्वामियों को खुली छूट दे दी'' जिसके कारण शोषक वर्ग इस का लाभ बराबर उठाते रहे हैं।

'इमरतिया' उपन्यास में शिवनगर की रानी साहिबा प्रारम्भ में जमनिया-मठ के प्रति अत्यधिक आदर भाव रखती थी। और वर्ष भर में दो बार साधुओं को भंडारा भी देती है, लेकिन अभयानंद की शिकायत पर जब इस मठ के सभी साधुओं के गिरफ्तार होने पर साईं इमरतिदास को लिखे गये पत्र में उसका यह कथन- ''लालता को सौ रुपये भिजवा दिये हैं, लेकिन मुकदमें की पैरवी के लिए मैं किसी के नाम सिफारसी पत्र न दे सकूँगी, किसी से इस सम्बन्ध में मिलना भी न चाहूँगी।''[12] इसके पीछे रानी साहिबा की घनघोर स्वार्थलिपसा ही परिलक्षित दिखाई पड़ती है। अपने आर्थिक हितों के विस्तार के लिए रानी साहिबा जमनिया मठ का भरपूर उपयोग करती है, लेकिन संकट के घड़ी आने पर मठ से छिटककर दूर खड़ी हो जाती है। बेगार प्रथा सामन्ती समाज की एक ऐसी घृणित एवं शोषक वृति है, जिसके अंतर्गत कृषकों मजदूरों से बिना उनके श्रम का मूल्य दिये ही काम लिया जाता है। जोकि जमींदारों द्वारा निम्न वर्ग पर किये गये शोषण की ओर संकेत करता है। इसी कारण निम्न वर्ग दिन-प्रतिदिन आर्थिक रूप से विपन्न होता जा रहा है, और भारी आर्थिक अभाव के कारण केवल दिन बसर कर रहा है।

[10] रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृष्ठ 92
[11] वरुण के बेटे, नागार्जुन, पृष्ठ 29
[12] इमरतिया, नागार्जुन, पृष्ठ 124

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018

जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

इसके लिए समाज का जमींदार व पूंजीपति ही जिम्मेदार है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नागार्जुन समाजवादी यथार्थ के प्रबल समर्थक थे, उन्होंने सामाजिक विसंगतियों को अपनी औपन्यासिक कृतियों में उद्घाटित किया है। शूद्र कहे जाने वाले अस्पृश्य वर्ग के ऊपर किये गये अत्याचार, मानवता और भारतीय सभ्यता के आदर्शों के प्रतिकूल व्यवहार, हिन्दू के ऊपर कंलक है। उन्होंने अपने उपन्यासों में जाति प्रथा की घातक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज बुलंद की है, तथा हरिजन कहे जाने वाले अस्पृश्य के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। मुख्यतः नागार्जुन की मूलभावना समाज कल्याण की रही है। आर्थिक दृष्टि के अन्तर्गत जमींदारों के द्वारा शोषण के कारण ही सर्वहारा वर्ग की आर्थिक स्थिति दयनीय रही है।

***श्री जगदेवसिंह संस्कृत महाविद्यालय**
सप्तऋषि आश्रम हरिद्वार
पत्रालय – साधुबेला
जनपद हरिद्वार, उत्तराखण्ड